योगाभ्यास का महत्व

लेखक—महामण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती
ऋषिकेश, हिमालय।

इस महत्वपूर्ण पत्रिका को शिवानन्द सेवक, (श्री देवीदास सेठ) अमृतसर, के प्रेम पूर्ण दान से श्री सद्गुरु स्वामी शिवानन्द जी महाराज की सत्तरवीं वर्षगांठ के सुअवसर पर, आध्यात्मिक प्रचार के हेतु छपवाया गया है।

प्रकाशकः—

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती
दिव्य जीवन संघ,
ऋषिकेश, [हिमालय]
१९५६ ई०

मुद्रकः—

योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस, आनन्द कुटीर (ऋषिकेश)
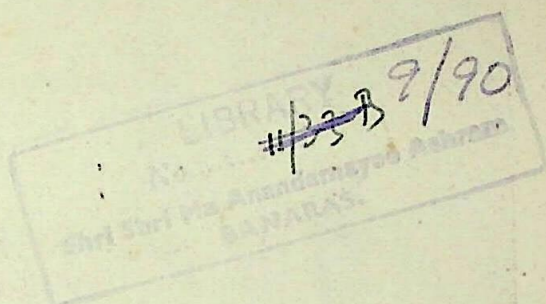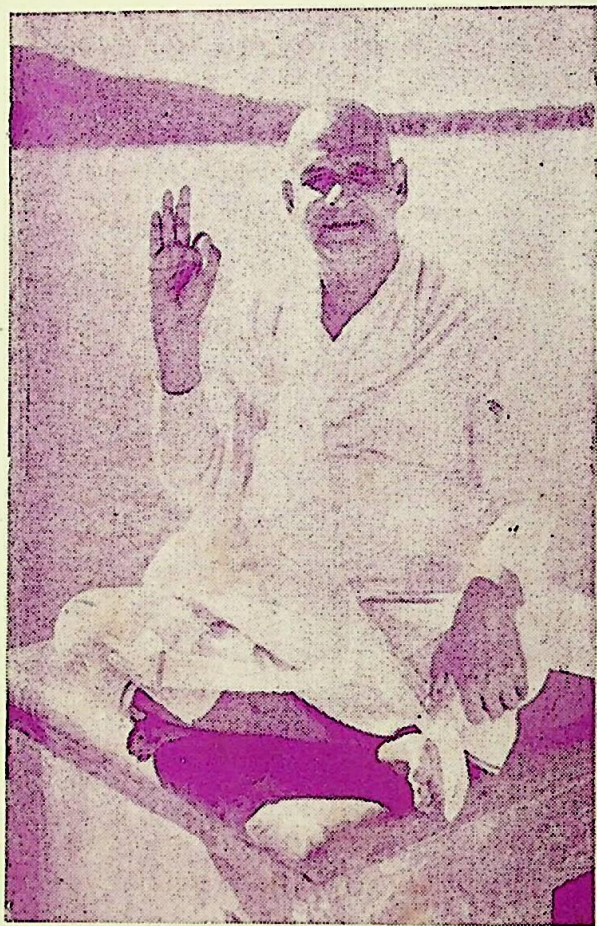
हे नर ! उठो ! अच्छा बनो !
अच्छे कर्म करो ! शुद्ध बनो !
दिव्य जीवन यापन करो !
महान् लक्ष्य को प्राप्त करो !!

—शिवानन्द

॥ ॐ सद्‌गुरु परमात्मने नमः ॥

योगाभ्यास का महत्व

विश्व-प्रार्थना

हे प्रभु ! तू इस संसार का स्रष्टा है। तू इस संसार का रक्षक है। तू ही घास में है तथा तू ही गुलाब में। तू सूर्य तथा तारों में है। हे जन्म-मृत्यु के चक्र को विनष्ट करने वाले ! तुझे नमस्कार है। हे आनन्द तथा अमृतत्व के प्रदायक ! तुझे नमस्कार है।

हे प्रिय प्रभु ! मैं मृत्यु के बंधन से मुक्त होऊँ। पुनः मैं कभी अपने अमर स्वरूप को न भूलूँ। मैं सबों पर समदृष्टि रखूं ! मैं मल तथा पाप से मुक्त होऊँ। मैं अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करूँ।

उस परम प्रभु को नमस्कार है जो सबों का अंतर्यामी है, जो जल तथा अग्नि में है, जो पौधे, वनस्पतियों, तथा वृक्षों में है, जो प्रस्तर, ईंट तथा लोहे के छड़ों में है तथा जो समस्त विश्व में व्याप्त है।

हे गुह्यों के गुह्यतम ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। हे अंतर्यामिन् ! तुझे मेरा नमस्कार है सबों के मन के साक्षी ! तुझे मेरा ममस्कार। हे सूत्रात्मन तथा सर्वव्यापक ! तुझे मेरा नमस्कार !

हे परम प्रभु ! तुझे नमस्कार। तू अनादि तथा अनंत है। तू पुष्प है। तू भ्रमर है। तू स्त्री है। तू पुरुष है। तू तरंग है। तू वृद्ध है। तू साधु है और तू ही असाधु है।

तू दिव्य ज्योति है। तू ज्ञान ज्योति है। तू तमस् निवारक है। तू परम गुरु है। तू मन तथा वाणी से परे है। तू परमात्मन् है। तू विश्वात्मन् है।

तू स्वयं प्रकाश है। तू निष्कल, निष्क्रिय, निरवयव, निर्दोष तथा जन्म मृत्यु रहित है। तू पिता माता, भाई, मित्र, संबंधी, गुरु तथा परम आश्रय है। तू शान्ति, आनन्द, ज्ञान, शक्ति, बल तथा सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है।

हे करुणानिधान! तेरी कृपा से मैं सत्य का साक्षात्कार करूँ। मैं सदा दिव्य विचारों को प्रश्रय दूं। मैं अपनी आत्मा में दिव्य ज्योति का साक्षात्कार करूँ। मैं आत्म भाव से मानवता की सेवा करूँ। मैं लोभ, काम, अभिमान, द्वेष, घृणा आदि से मुक्त हो जाऊँ। मैं एक अमरात्मन् का ही सबों में दर्शन करूँ। मैं शुद्ध बुद्धि के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करूँ।

वह ज्योतियों को ज्योति सदा मुझे मार्ग दिखाए! वह हमारे मन को शुद्ध बनावे। वह मुझमें प्रेरणा भरे।

वह मुझमें बल, साहस तथा शक्ति भरे। वह आवरण को दूर करे। वह आध्यात्मिक मार्ग की सारी बाधाओं को दूर करे। वह मेरा जीवन सुखमय तथा सफल बनावे। हे देवों के देव, तुझे नमस्कार है। तू उपनिषदों का ब्रह्म, माया तथा ईश्वर का अधिष्ठान तथा अमृतत्व का परम सेतु है!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मन, इन्द्रिय, तथा भौतिक शरीर का अनुशासन ही योग है। योग शरीर के भीतर की सूक्ष्म शक्तियों के संगठन एवं नियंत्रण में सहायता प्रदान करता है। योग पूर्णता, शांति तथा अमर सुख प्रदान करता है योग आपके व्यापार एवं दैनिक जीवन में सहायता दे सकता है। योगाभ्यास से आप के मन में सदा शांति रहेगी। आपकी नींद शांति पूर्ण होगी। आपका स्वास्थ्य सुन्दर रहेगा आपकी शक्ति बढ़ेगी। अल्प काल में ही आप बहुत अधिक कार्य कर सकेंगे। आपको जीवन के हर क्षेत्र में सफलता मिलेगी। योग आप में नवशक्ति, नवउत्साह, विश्वास एवं आत्मबल को भरेगा। योग के द्वारा आप मन, वासना, आवेग, जिह्वा इत्यादि पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं। मन तथा शरीर आपके अधीन रहेंगे।

ईश्वर को प्राप्त करना ही योगानुशासन की पराकाष्ठा है। अहंकार के विनष्ट होने के पश्चात् मनुष्य में पूर्ण स्वतंत्रता आ जाती है तथा वह सारे दैवी सद्‌गुणों से संपन्न हो जाता है। वह अमर आत्मा का उपभोग करता है।

योगी, ज्ञानी तथा भक्त सबों को तितीक्षा का उपार्जन करना चाहिए। योग के सफल अभ्यास के लिए साधक को बहुत सी विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। तितीक्षा से इच्छा शक्ति बढ़ती है। यही कारण है कि भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं "हे कुंती के पुत्र सर्दी-गर्मी और सुख दुख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर और अनित्य हैं इसलिए हे भरतवंशी

अर्जुन उनको तू सहन कर। क्योंकि हे पुरुष श्रेष्ठ! दुख सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को यह इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्ष के लिए योग्य होता है। (भगवद् गीता अ० २: १४-१५) यम एवं नियम में परिपूर्णता की प्राप्ति ही योगी का अंतिम लक्ष्य नहीं है। यह तो लक्ष्य की प्राप्ति की साधना मात्र है। फिर भी बौद्धिक ख्याति को प्राप्त करना आसान है परन्तु यम नियम में संस्थित होना बहुत ही कठिन है। सत्य का साक्षात्कार तो वही करेगा जिसका हृदय शुद्ध तथा निर्मल है।

आर्जव, सच्चाई, करुणा, नम्रता, अहिंसा, निस्वार्थता, सत्यं, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निरभिमानिता, तथा विश्व प्रेम—ये नैतिक जीवन के सारांश हैं।

योग के साधक को अधिक सम्पत्ति नहीं रखनी चाहिए क्योंकि वह प्रलोभनों में जा फँसेगा। शरीर की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए वह कुछ रुपए रख सकता है। आर्थिक स्वतन्त्रता उसके मन को चिन्तओं से मुक्त रखेगी। और उसे अबाधरूप से साधना करने में समर्थ बनाएगी

योगाभ्यासी को मिताहारी होना चाहिए। सुस्ती, आराम, आलस्य तथा अधिक नींद को दूर करना चाहिए। उसे मौन तथा समय समय पर साधारण उपवास का व्रत करना चाहिए जिससे स्वाथ्य अच्छा रहे। उसे अच्छी आदतों का अभ्यास करना चाहिए। विचार, विवेक तथा चिंतन के द्वारा सांसारिक इच्छाओं का दमन करना चाहिए। अपने मन को उसे इस प्रकार फटकारना चाहिए "हे मन! मैं तुम्हारी चालों को जानता हूँ। मुझमें अब विवेक तथा

वैराग्य है। अब अपनी चालें न चलो। मैंने बहुत सी सीखें ली हैं। अज्ञान के कारण ही मनुष्य शाश्वत-सुख को छोड़ क्षणिक लाभों के पीछे परेशान रहता है। मैं इन विषय सुखों को नहीं चाहता। मेरे लिए तो वे वमन किए हुए पदार्थ की तरह हैं। मैं योग के अमर फल को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हूँ। शाश्वत शांति, असीम सुख तथा परमानन्द ही योग का अमर फल है।

अबाध ध्यान करने के लिए योग विषय सुखों से पूर्ण अनासक्ति की शिक्षा देता है। हृदय के भीतर की ज्योति अथवा जो भी वस्तु आपके लिए सुखद हो उस पर आप ध्यान कर सकते हैं। योग के सतत अभ्यास के लिए मनुष्य को दैनिक कार्य-व्यापारों से उपरत होना चाहिए। सुनियमित जीवन के द्वारा घर पर योग का अभ्यास कर सकते हैं।

मनुष्य अपने इन्द्रियों एवं रागों के दमन के द्वारा तथा संयम (धारणा, ध्यान, और समाधि के संयुक्त अभ्यास) के द्वारा तरह तरह की अलौकिक सिद्धियों को प्राप्त करता है। योग-सूत्र के लेखक पातंजलि महर्षि साधकों को आगाह करते हैं कि वे इन सिद्धियों के प्रलोभन में न फँसें। असावधान योगी को देव-गण प्रलोभन देते हैं। स्पष्ट चेतावनी दे देने के बाद भी साधक सत्य की खोज में प्रयत्न-शील न होकर सिद्धियों में पड़े रहते हैं।

शक्ति की कामना वायु के झकोड़े का काम करती है जो योग-प्रदीप को बुझा डालती है। असावधानी तथा स्वार्थ के कारण प्रदीप का पोषण नहीं हो पाता तथा इतने संघर्ष के बाद योगी ने योग-प्रदीप का जो अर्जन किया था वह

विलुप्त हो जाता है। पुनः पहली हालत को प्राप्त करना उसके लिये असम्भव सा हो जाता है। असावधान साधकों को निगलने के लिये प्रलोभन बाट जोहते रहते हैं। सूक्ष्म, मानसिक तथा गंधर्व लोकों के प्रलोभन सांसारिक प्रलोभनों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। योग में सफलता तभी संभव है जब साधक सतत एवं गंभीर ध्यान का अभ्यास करे। उसे सदा आत्म-निग्रह का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि अचानक इन्द्रिय उग्ररूप धारण कर सकते हैं। यही कारण है कि भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"हे कुन्ती पुत्र! यह उग्र स्वभाव वाली इंद्रियां यत्नशील बुद्धिमान पुरुष के भी मन को बलात्कार से हर लेती हैं। जल में वायु जैसे नाव को हर लेता है वैसे ही विचरती हुई इन्द्रियों के बीच में जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है वह इस पुरुष की बुद्धि को हरण कर लेती है।"

(भगवद् गीता २–६०–६७)

योगी के मार्ग में बहुत सी बाधाएँ आया करती हैं। निराशा, उदासी, रुग्णता, अवसाद, शंका अनिश्चय, शारीरिक तथा मानसिक शक्ति की कमी, आलस्य, अस्थिरता, विषय सुखों की तृष्णा, गलती—ये सब बाधाएँ हैं। उसे हतोत्साह नहीं होना चाहिये। इन बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए पातंजलि महर्षि के अनुसार 'एक तत्त्वाभ्यास' अथवा एक वस्तु पर मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए। इससे उसमें स्थिरता तथा शक्ति आयेगी। साथ ही पातंजलि महर्षि बतलाते हैं कि समान लोगों के साथ मित्रता, छोटों के प्रति करुणा तथा बड़ों के प्रति मुदिता तथा दुष्टों के प्रति उपेक्षा का अभ्यास

करना चाहिए। इन सद् गुणों के अभ्यास से मनुष्य में नव-जीवन का संचार होगा। अध्यवसाय की आवश्यकता है। यही योग की कुंजी है। मन के पूर्ण नियंत्रण के बाद योगी परम लाभ को प्राप्त करता है। वह असंप्रज्ञात समाधि के परमानन्द का उपभोग करता है।

[२]

सदा मन का संतुलन बनाए रखो। यह बहुत ही आवश्यक है। यद्यपि यह कठिन है फिर भी है अनिवार्य। तभी तुम सुखी हो सकते हो। सुख दुख, गर्मी सर्दी, लाभ हानि, सफलता विफलता, मानापमान, आदर अनादर इन सबों में जो सम रहता है वह ज्ञानी है। यह अभ्यास यद्यपि कष्टकर है फिर भी इससे आंतरिक आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति होती है। जो सदा मन का सन्तुलन बनाए रखने में समर्थ है वह इस विश्व का महान पुरुष है। उसकी पूजा करनी चाहिए। यद्यपि वह चिथड़ों से ढका हुआ है, यद्यपि उसे भोजन के लिए कुछ भी नहीं है फिर भी वह महान् सम्पत्तिवान है। यद्यपि उसका भौतिक शरीर कमजोर है फिर भी वह सबसे अधिक शक्तिशाली है। सांसारिक जन छोटी छोटी बातों में ही मन के संतुलन को खो बैठते हैं। वे बहुत जल्दी चिड़चिड़ा पड़ते हैं। क्रोधित होने पर शक्ति का अपव्यय होता है। चिड़चिड़ा मनुष्य बहुत ही कमजोर होता है। यद्यपि उसके पास शारीरिक शक्ति रहती है तथा उसका शरीर सुपुष्ट रहता है। जो लोग मन के समत्व का अभ्यास करते हैं उन्हें विवेक ब्रह्मचर्य तथा ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। जिन लोगों ने अपने वीर्य का अपव्यय किया है वे शीघ्र ही चिड़चिड़ा पड़ते हैं।

चिड़चिड़ापन ही समय पाकार क्रोध के रूप में प्रकट होता है। तुम्हें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। चिड़चिड़ापन को प्रारम्भ में ही तुम्हें विनष्ट कर देना चाहिये। जब कभी तुम किसी आवेग के अधीन होते हो तब उसके दूसरे आक्रमण को रोकने में और अधिक कठिनाई उठानी पड़ेगी। परन्तु इसके विपरीत यदि तुम उसको दमन करने में सफल होओगे तो उसके दूसरे आक्रमण को रोकने में और भी अधिक आसानी होगी। यह प्रकृति का अविचल नियम है।

क्रोध का आवेग तो विलीन हो जाता है परन्तु इसका एक निश्चित चिह्न सूक्ष्म शरीर में जा पड़ता है। मनुष्य चिड़चिड़ापन के आक्रमणों का अधिकाधिक शिकार बनता जाता है। सूक्ष्म शरीर क्रोध के आवेगों को और भी प्रबल करता है। मनुष्य आत्म-नियंत्रण को खो बैठता है। उस क्षण वह कैसा ही कुकर्म कर सकता है। वह खून अथवा किसी प्रकार का भी निर्मम कार्य कर सकता है साथ ही वह विचार-जगत को कलुषित करता है तथा अपने बुरे स्पंदनों से अपने चतुर्दिक के लोगों को नुकसान पहुँचाता है। अतः उचित यह है कि हर मनुष्य को क्रोध के आवेगों पर पूर्ण नियंत्रण लाना चाहिए। किसी व्यक्ति के साथ बोलने तथा चलने के समय उसे बहुत सावधान रहना चाहिए।

इन्द्रिय आपके शत्रु हैं। वे तुम्हें बहिर्मुख बना देते हैं और तुम्हारी मानसिक शांति को हर लेते हैं। उनका साथ न दो। उनका निग्रह करो। दमन करो। जिस प्रकार उपद्रवी घोड़े को वशीभूत किया जाता है

उसी प्रकार उन्हें वशीभूत करो। इन्द्रियों के दमन से मानसिक शांति तथा आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। यह एक दिन का काम नहीं है। बहुतदीर्घ काल तक सतत अभ्यास से ही यह संभव है। इन्द्रियों का दमन ही वास्तव में मन का दमन है। दसों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना होगा। निराहार रख कर उन्हें मार डालो। उनकी इच्छानुसार उन्हें विषय प्रदान न करो। तब वे शनैः शनैः क्षीण पड़ जायंगे। वे तुम्हारी आज्ञा अक्षरशः पालन करेंगे। सांसारिक जन तो इन्द्रियों के पूर्ण गुलाम हैं। यद्यपि वे शिक्षित हैं तथा उनके पास बहुत सी शक्तियां हैं फिर भी वे गुलाम हैं। यदि तुम मांसाहार के गुलाम हो तो छः महीने तक मांस खाना बंद कर देने से तुम जिह्वा पर विजय प्राप्त करने लगोगे। तुम इसका अनुभव करोगे कि तुमने जीभ पर थोड़ी विजय प्राप्त कर ली है।

सतर्क, साधवान तथा सचेत रहो। अपने मन तथा वृत्तियों पर निरीक्षण रखो। भगवान जीसस कहते हैं, "निरीक्षण रखो और प्रार्थना करो।" लाखों में कोई एक ही इस लाभकारी, आत्मोद्बोधक साधना को करता है। लोग सांसारिकता में विमग्न हैं। वे काम कांचन के पीछे ही दौड़ते रहते हैं उन्हें तो समय ही नहीं कि वे आत्मा अथवा ऊँची आध्यात्मिक वस्तुओं के बारे में विचार करें। सूर्य उगता है और मन पुनः प्राचीन खाने, पीने, मौज उड़ाने तथा सोने की वैषयिक प्रणालियों में दौड़ने लगता है। सारा दिन बीत जाता है। इसी प्रकार सारा जीवन ही व्यतीत हो जाता है। न तो नैतिक विकास होता है और न होती है आध्यात्मिक प्रगति। तथाकथित शिक्षित

तथा सभ्य जन भी अंतर्निरीक्षण करना नहीं जानते। वे केवल बुद्धि का विकास करते हैं। कुछ रुपये कमाते हैं, कुछ पद-पदवी प्राप्त करते हैं, और आत्म-ज्ञान को पाए बिना इस संसार से चल बसते हैं! क्या यह दुखद नहीं है? जो नित्य प्रति अंतर्निरीक्षण करता है वह अपने दोषों को जान सकता है तथा उपयुक्त तरीकों से उन्हें दूर कर सकता है। उसे पूर्ण मनोजय की प्राप्ति होगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह, तथा मद उसके पास नहीं फटकेंगे। करुणा, क्षमा, सत्व, साहस आदि दैवी गुणों का वह अर्जन कर सकेगा।

दैनिक आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-परीक्षण अनिवार्य है। तभी योग का साधक अपने दोषों को दूर कर आध्यात्मिक उन्नति कर सकेगा। माली किस प्रकार काम करता है? वह नये पौधों की निगरानी करता है। वह नित्यप्रति मोथों को निकाल फेंकता है। वह उनके चारों ओर नया घेड़ा डालता है। एक निश्चित समय पर वह उनमें पानी डालता है। तभी वे शीघ्रता पूर्वक बढ़ते हैं और फल देते हैं। ठीक उसी प्रकार साधक को भी चाहिए कि वह नित्य-प्रति आत्मनिरीक्षण करके अपने दोषों को जान ले और उचित साधनों द्वारा उन्हें दूर करे। यदि एक तरीका से सफलता नहीं मिलती तो संयुक्त तरीका को इस्तेमाल में लावे। यदि प्रार्थना से सफलता नहीं मिलती तो उसे सत्संग, प्राणायाम, ध्यान, आहार-संयम, विचार आदि का प्रयोग करना चाहिए। उसे केवल घमंड, पाखंड, काम, क्रोध इत्यादि की वृत्तियों का ही दमन नहीं करना चाहिए वरन् चित्त में निहित इनके सूक्ष्म संस्कारों का भी दमन करना चाहिए। तभी वह पूर्णतः सुरक्षित रह सकता है।

ये सूक्ष्म संस्कार बहुत ही भयंकर हैं। वे चोरों की भांति बाट जोहते रहते हैं और साधक जब थोड़ा भी असावधान हो जाता है तब आक्रमण कर डालते हैं। जब अत्यन्त कठिनाइयों की अवस्था में तथा नियमित आत्मनिरीक्षण तथा आत्म-परीक्षण के बिना भी इन विकारों की अभिव्यक्ति न हो तो समझ लेना चाहिए कि उनके सूक्ष्म चिह्न भी मिट गए हैं। आत्म विश्लेषण के लिए धैर्य, अध्यवसाय, दृढ़ इच्छाशक्ति, नियमितता, दृढ़-संकल्प, सूक्ष्मबुद्धि, साहस इत्यादि की आवश्यता है इससे तुम अनमोल फल प्राप्त करोगे। परम शान्ति तथा परमानन्द ही वह फल है। परन्तु इसके लिए तुम्हें काफी मूल्य चुकाना होगा। अतः दैनिक साधना में आनाकानी न करो। हृदय, मन, बुद्धि तथा आत्मा सबों को लगा डालो। तभी उन्नति शीघ्र हो सकेगी।

योग के हरएक साधक को मन का समाधान होना आवश्यक है। अशान्त चित्त का साधक योग में अल्पमात्र भी उन्नति नहीं कर सकता। अतः मन का समाधान, अथवा चित्त की स्थिरता सब से पहले होना चाहिए। प्रातः में मूक ध्यान, कामनाओं का परित्याग, सात्विक आहार, इन्द्रियों का निग्रह, प्रतिदिन एक घंटा मौनव्रत का पालन, इत्यादि साधनों से चित्त की स्थिरता होगी। सारे व्यर्थ विचार, भावनाएँ, चिन्ताएँ, दुख, अशान्ति, काल्पनिक भयों को नष्ट करना चाहिए। तभी तुम्हारा मन शांत हो सकेगा। जब मन में पूर्णतः स्थिरता आ जाएगी तभी योग की नींव यथार्थतः डाली जा सकती है। शांत मन ही ईश्वरीय ज्योति को प्राप्त कर सकता है। शान्त मन ही आध्यात्मिक प्रकाश का उपयुक्त पात्र है। शान्त मन

होने से आध्यात्मिक अनुभव चिरस्थाई रहेंगे। अन्यथा वे आते और जाते रहेंगे।

प्रात: उठते ही चार से छः बजे तक प्रार्थना, जप, तथा ध्यान करो। तब दृढ़ संकल्प करो "मैं आज ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। मैं आज सत्य बोलूंगा। मैं आज क्रोध न करूँगा।" मन का निरीक्षण करो। प्रबल इच्छाशक्ति रखो। दृढ़ प्रतिज्ञ बनो। तुम्हें उस दिन अवश्य ही सफलता मिलेगी। तब तुम उसी संकल्प को एक सप्ताह तक चला सकते हो। तुम्हें शनैः शनैः शक्ति प्राप्त होगी। तुम्हारी इच्छा शक्ति बढ़ेगी। तब एक महीने के लिए संकल्प रखो। यदि प्रारम्भ में थोड़ी गलती भी हो जाय तो उससे अनावश्यक परेशानी नहीं होनी चाहिए। गलतियां तो तुम्हारे सर्वोत्तम गुरु हैं। तुम पुनः उन्हीं गलतियों को नहीं करोगे। यदि तुम सच्चे और ईमानदार हो तो ईश्वरीय कृपा तुम पर प्रवाहित होगी। ईश्वर तुम्हें शक्ति देगा जिससे तुम कष्टों एवं बाधाओं का सामना कर सकोगे।

जिसने मन को वशीभूत किया है वही वास्तव में सुखी स्वतंत्र है और शारीरिक स्वतंत्रता तो कोई स्वतंत्रता नहीं। यदि मनुष्य आवेगों, तृष्णाओं, रागों, एवं अवस्थाओं का शिकार है तो फिर वह सुखी कैसे रह सकता है? वह पाल रहित नौका के सदृश है। नदी में तृण जिस तरह डंवाडोल रहता है उसी तरह उसका जीवन भी है। वप पांच मिनटों के लिए हंसता है और पांच घन्टों के लिए रोता है। अपने मन के आवेगों से चलायमान होने पर तुम्हारी स्त्री, तुम्हारा पुत्र, मित्र, रुपये, यश, पद, शक्ति इत्यादि कर ही क्या सकते हैं? वास्तविक वीर तो वही है जिसने मन को

वशीभूत किया है। कहावत ही है "मन जीता तो जगजीता।" मन पर विजय ही वास्तविक विजय है। तभी मनुष्य वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। नियमित साधना, तथा संयमों के द्वारा तुम्हें अपनी कामनाओं, व तृष्णाओं तथा अपने विचारों का दमन करना पड़ेगा। तथा तुम मन के बंधन से अपने को छुड़ा सकते हो। तुम्हें मन को ढीला नहीं छोड़ना चाहिए। मन तो दुष्ट शैतान है। तुम्हें निर्मम तरीकों से उसे दमन करना होगा। तभी तुम पूर्ण योगी बनोगे। रुपये तुम्हें स्वतन्त्रता नहीं देंगे। स्वतन्त्रता बाजार में खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है। यह पांच फनों वाले सर्प से रक्षित एक अनुपम भंडार है। सर्प को मारे बिना इस भंडार को तुम प्राप्त नहीं कर सकते। वह भंडार आध्यात्मिक सम्पत्ति है। मन ही वह सर्प है। उसके पांच फन पांच इन्द्रिय हैं जिनसे वह सर्प फुफकारता है।

राजसिक मन सदा नई वस्तुओं को चाहता है। यह विविधता को पसन्द करता है। एक ही वस्तु से वह ऊब उठता है। यह स्थान में परिवर्त्तन, भोजन में परिवर्त्तन तथा संक्षेपतः सभी वस्तुओं में परिवर्त्तन चाहता है। परन्तु योग के साधक को तो मन को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह एक वस्तु पर एकाग्र हो सके। उसे अभिन्नता से घबड़ाना नहीं चाहिए। उसमें दृढ़ धैर्य, प्रबल इच्छाशक्ति तथा अथक अध्यवसाय होना चाहिए। तभी वह योग में सफल हो सकेगा। जो मनुष्य सदा नई वस्तु को चाहता है वह योग के लिए अयोग्य है। उसे एक स्थान, एक शिक्षक, एक साधना, तथा योग की एक प्रणाली को ही पकड़े रहना चाहिए। तभी शीघ्र उन्नति सम्भव है। तुम में ईश्वर-

साक्षात्कार की वास्तविक पिपासा होनी चाहिए। तब सारी बाधायें दूर हो जायंगी। तभी तुम योग-मार्ग में दृढ़ हो सकोगे। सिद्धि प्राप्ति की कुतूहल के कारण अल्पकालिक आवेग से कोई ठोस लाभ न हो सकेगा।

जब तुमने ध्यान में कुछ उन्नति कर ली है तब तुम आवेगों से चलायमान न हो सकोगे। समय समय पर अशान्ति तथा व्यर्थ वस्तुओं की तृष्णा प्रगट होगी परन्तु तुममें काफी शक्ति रहेगी जिससे तुम उनको दबा सकते हो। तुम उनसे पराजित नहीं होओगे। शनैः शनैः ज्ञानाग्नि के द्वारा ये तृष्णायें भी विदग्ध हो जायंगी।

यदि तुम असावधान हो, यदि तुम यौगिक साधना में अनियमित हो, यदि तुम्हारा वैराग्य दुर्बल है, यदि तुम आलस्य के कारण कुछ दिनों के लिए साधना को स्थगित कर देते हो तो ऐसी हालत में बुरी शक्तियां तुम्हें वास्तविक पथ से दूर ले जायंगी। तुम भटक पड़ोगे। पुनः पहली स्थिति को प्राप्त करना भी तुम्हारे लिए कठिन हो जायगा। अतः अपनी साधनाओं में बहुत ही नियमित बनो।

अपनी आवश्यकताओं को कम कर, तथा अपनी इच्छाओं को क्षीण कर अशांत मन को शान्त बनाना चाहिए। तुममें प्रबल मुमुक्षुत्व होना चाहिए। तभी तुम उन्नत आध्यात्मिक प्रभावों, की प्राप्ति के लिए अपने मन को उन्मुक्त कर सकते हो। दिव्य ज्योति शनैः शनैः उतरती है। तुम आंतरिक परिवर्त्तन तथा आध्यात्मिक प्रगति का भान करोगे। शनैः शनैः वैयक्तिक चेतना सर्वात्म चैतन्य में विलीन हो जायगी। वैयक्तिक इच्छा ईश्वरीय इच्छा में विलीन हो जायगी। यही समाधि की अवस्था है। मनुष्य तब ईश्वर ही हो जाता है।

अनेक युगों के पश्चात् उसने अपने धाम को प्राप्त कर लिया है। अमरानन्द तथा अमरत्व ही वह धाम है।

तुम्हें मन से सारे रजस् को निकाल फेंकना होगा। राग ही रजस् है। सारी सांसारिक इच्छाएँ रजस् से ही उत्पन्न हैं। इच्छा मन को अशांत बना डालती है। यदि इच्छा की पूर्त्ति नहीं हुई तो मन उदासीनता तथा दुखों से भर जाता है। आकांक्षाओं से पूर्ण मनुष्य को शांति नहीं मिलती। वह इसी की चिन्ता करता रहता है। "इस प्रयास में मैं क्या सफल होऊँगा। यदि सफल भी हुआ तो क्या मैं अमुक व्यक्ति की तरह प्रभाव जमाने में समर्थ हो सकूँगा या नहीं" आकांक्षा योग के लिए बड़ी बाधा है। तुम्हें सर्व प्रथम मानसिक शांति का अर्जन करना चाहिए। तभी योग की इमारत शीघ्र ही तैयार की जा सकती है। शांत मन में ही ईश्वरीय ज्योति का अनुभव हो सकेगा। यदि तुम्हारा मन शांत है तो तुम दिव्य-दर्शनों को प्राप्त करोगे।

उदास मनुष्य अपने चतुर्दिक दुखद एवं उदासपूर्ण स्पन्दनों को विकीर्ण करता रहता है। उदासी से बढ़कर और कुछ भी संक्रामक नहीं है। यदि तुम उदास हो तो अपनी कुटीर से कभी बाहर मत निकलो क्योंकि इस संक्रामक व्याधि को तुम अपने मित्रों तथा पड़ोसियों में फैला डालोगे। अवसाद तुम्हारे अन्तरतम को प्रभावित कर डालता है। यह विनाशकारी कीड़े के सदृश है। यह तो संघातक प्लेग है। निराशा, विफलता, मंदाग्नि, अधिक बहस, गलत विचार तथा भावनायें इसके कारण हो सकती हैं। इस ऋणात्मक भावना से अपने अलग करो तथा परम पुरुष के साथ तादात्म्य स्थापित करो। आंतरिक

जीवन व्यतीत करो। कोई बाहरी प्रभाव तुम पर आघात न पहुँचा सकेगा। तुम अवसाद तथा अन्य कोई भी विरोधी शक्ति से अप्रभावित रहोगे। विचार, कीर्त्तन, प्रार्थना, ओम् जप, प्राणायाम, खुली हवा में भ्रमण, विपरीत-भावना—आनन्द की भावना पर विचार के द्वारा अवसाद को दूर भगाओ। सभी अवस्थाओं में सुखी रहने का प्रयास करो और अपने चतुर्दिक सुख को विकीर्ण करो।

यह संसार ईश्वर के विचारों का ही भौतिक रूप है। विज्ञान में गर्मी तथा प्रकाश की तरंगों का वर्णन है। ठीक उसी तरह योग में विचार तरंगें हैं। विचार में महती शक्ति है। हर व्यक्ति विचार शक्ति का कुछ हद तक अनजाने भी प्रयोग करता रहता है। यदि तुम्हें विचार-स्पन्दों के कार्यों पूरा ज्ञान है, यदि तुम विचारों को नियंत्रित करने का तरीका जानते हो, यदि तुम शुभ विचारों को दूसरों तक पहुंचाने की प्रक्रिया से अवगत हो, तो तुम इस विचार शक्ति से बहुत ही अधिक सक्रिय लाभ उठा सकते हो। विचार गति शील है। विचार चमत्कारों को कर डालता है विचार व्याधि दूर करता है। विचार में तौल, आकार, रूप तथा रंग है। गलत विचार बन्धन में डालता है। उचित विचार मुक्त करता है। अतः ठीक तरीके से विचार करो और मुक्ति प्राप्त करो।

केवल विचार ही मनुष्य के कर्म का कारण नहीं है। ऐसे भी बुद्धिमान जन हैं जो किसी वस्तु के बारे में अच्छी तरह विचार कर सकते हैं परन्तु समय आने पर प्रलोभनों में जा फंसते हैं। गलत कार्यों को कर बैठते हैं और फिर पाश्चात्ताप करते हैं। अतः भावना ही मनुष्य को कर्मों में प्रयुक्त करती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि कल्पना

ही मनुष्य को कर्मों में प्रयुक्त करती है। इस केलिए वे निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। फर्ज कीजिए कि एक लम्बा लकड़ी का टुकड़ा जो एक फीट चौड़ा है, बीस फीट ऊँचे दो दीवालों पर रखा हुआ है। आप इस तख्ते पर चलना प्रारंभ करते ही ऐसी कल्पना करते हैं कि कहीं आप गिर न जायं और फलत: आप गिर पड़ते हैं जबकि वही तख्ता जब जमीन पर रखा हुआ होता है तब आप उस पर आसीन से चल सकते हैं। पुन: कल्पना कीजिए एक संकड़े मार्ग से आप साईकिल चला रहे हैं। रास्ते में एक बड़ा चट्टान है। आप कल्पना करते हैं कि साइकिल उस चट्टान से टकरा जायगी और वैसा ही होता भी है। कुछ दूसरे वैज्ञानिक कहते हैं कि इच्छा शक्ति से ही कर्म सम्भव है। तथा इच्छा शक्ति ही सब कुछ कर सकती है। वे इच्छा शक्ति को आत्मिक शक्ति मानते हैं। वेदान्ती भी इसी सम्मति को रखते हैं।

मनुष्य एक विविध सामाजिक प्राणी है। प्राणी होने के नाते उसमें निश्चय ही रक्त संचालन, पाचन, श्वास, मल विसर्जन आदि की प्रक्रियायें होती रहती हैं। साथ ही उसमें विचार, अनुभूति, स्मरण, कल्पना आदि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें भी होती रहती हैं। वह देखता है;, विचारता है, स्वाद लेता है, गन्ध लेता है तथा अनुभव करता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से तो वह ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। वह स्वत: ब्रह्मन् ही है। उसने अपनी ईश्वरीय महिमा को विस्मृत कर दिया है अविद्या के कारण मानसिक अनुशासन तथा योगाभ्यास के द्वारा वह अपनी पहली अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

हे मेरे शिशु ! तुम रोते क्यों हो ? अपनी आंखों से बंधन को उतार डालो और देखो। माया के आवरण को उठाओ। तुम सत्य से ही आवेष्टित हो! आंखें खोलो और स्पष्टतः देखो। जहाँ कहीं भी तुम देखते हो वहां पूर्ण ज्योति तथा आनन्द ही है। अविद्या रूपी व्याधि ने तुम्हारी दृष्टि विकृत कर दी है। इस चक्षु व्याधि को तुरन्त दूर करो। रोज ध्यान के द्वारा ज्ञान के अन्तर्चक्षु का विकास कर अपने नेत्रों में नूतन चश्मे लगाओ।

❀ हरि ओम् तत्सत् ❀

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

दिव्य जीवन संघ

ऋषिकेश।

आनन्द कुटीर के श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी द्वारा १९३६ ई० में दिव्य-जीवन-संघ की स्थापना हुई। संसार के व्यस्त जीवन में रहते हुए भी किस प्रकार दिव्य-जीवन-यापन किया जा सकता है?—इसकी शिक्षा यह संघ देता है। यह अपने ढंग की एक ही संस्था है। जिसमें मनुष्य, स्त्री, बच्चे हर एक को उसके अपने अपने धर्म के अनुसार सत्य, शुद्धता, प्रेम तथा सेवामय दिव्य-जीवन यापन करने की शिक्षा दी जाती है।

मनुष्य को उसके जीवन के वास्तविक लक्ष्य से अवगत कराना तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति के साधनों को बतलाना ही इस संघ का उद्देश्य है। इसका लक्ष्य आध्यात्मिक, तथा सार्वभौमिक है। इसका कहना है कि मनुष्य चाहे किसी धर्म के अनुसार कैसी भी साधना क्यों न करे लक्ष्य तो एक ही है अतः उसे साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। यह सारे धर्मों, मतों, तथा सम्प्रदायों, को स्थान देता है।

कीर्त्तन, प्रार्थना, जप साधना, विभिन्न त्योहार तथा साधु-दिवस के द्वारा यह संघ ज्ञान यज्ञ, भक्ति प्रचार तथा निष्काम सेवा के कार्यों को करता है।

आध्यात्मिक साहित्य, नियमित सत्संग, निःशुल्क पत्रिका—वितरण, आध्यात्मिक सम्मेलन, डिवाइन-लाइफ पत्रिका, (अंग्रेजी), योग-वेदान्त

(हिन्दी), योग-वेदान्त फॉरेस्ट यूनिवर्सिटी वीकली, विजडम-लाइट, हेल्थ एण्ड लौंग लाइफ आदि पत्रिकाओं, साधना को शिक्षा, ईस्टर, क्रिसमस तथा दशहरा के दिनों में साधना सप्ताह के आयोजन आदि के द्वारा श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के संरक्षण में यह संघ अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में रत रहता है। दूर की जगहों में सन्देश तथा पत्र-व्यवहार के द्वारा आध्यात्मिकता जगाई जाती है।

गंगा के पवित्र तट पर ऋषिकेश (देहरादून) में इस संघ का केन्द्र स्थित है। इसकी शाखायें सारे भारत में तथा उसके बाहर कई स्थानों में हैं। यहां एक भजन हॉल, पूजा के लिए मन्दिर, परमार्थ-चिकित्सालय बच्चों के लिए एक स्कूल, अतिथियों के लिए बहुत से कुटीर, म्यूजियम,, तथा योग-वेदान्त-आरण्य विश्वविद्यालय है। साथ ही गंगा तथा हिमालय के मनोरम दृश्य और महात्माओं की संगति यहां उपलब्ध हैं। इस प्रकार दिव्य जीवन संघ आध्यात्मिक-मार्ग के अनुगमन करने वाले सारे साधकों को पथ-प्रदर्शन तथा प्रेरणा प्रदान करता है। यह सबों के लिए आनन्द एवं शान्ति का धाम है।

सेवा ! प्रेम ! दान ! शुद्धता ! ध्यान !

साक्षात्कार !